

अष्टांग योग

मानव जीवन के आध्यात्मिक उत्कर्ष में योग अत्यन्त उपयोगी दर्शन है। भारतीयों ने इस दर्शन का अनुशीलन विज्ञान की भाँति किया है और इसे उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाया है। काय और चित्त के मलों से मुक्त कर पुरुष की आध्यात्मिक समुन्नति में उपयोग करने की शिक्षा योग से ही मिलती है। आज पाश्चात्य मनोविज्ञानिकों तथा चिकित्सकों का भी ध्यान योग की ओर आकृष्ट हुआ है, जिससे उसका विपुल प्रचार पाश्चात्य जगत् में भी हो रहा है।

गणित की संख्याओं को जोड़ने के लिए भी 'योग' शब्द का प्रयोग किया जाता है परन्तु आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि में जब 'योग' शब्द का प्रयोग किया जाता है तब उसका अर्थ आत्मा को परमात्मा से जोड़ना होता है। महर्षि पतंजलि ने आत्मा को परमात्मा से जोड़ने की क्रिया को आठ भागों में बांट दिया है। यही क्रिया अष्टांग योग के नाम से प्रसिद्ध है।

आत्मा में बेहद बिखराव (विक्षेप) है जिसके कारण वह परमात्मा, जो आत्मा में भी व्याप्त है, की अनुभूति नहीं कर पाता। योग के आठों अंगों का ध्येय आत्मा के विक्षेपों को दूर करना ही है। परमात्मा को प्राप्त करने का अष्टांग योग से अन्य कोई मार्ग नहीं। अष्टांग योग के पहले दो अंग-यम और नियम हमारे संसारिक व्यवहार में सिद्धान्तिक एकरूपता लाते हैं। अन्य छः अंग आत्मा के अन्य विक्षेपों को दूर करते हैं। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित योग के आठ अंगों के क्रम का भी अत्यन्त महत्त्व है। हर अंग आत्मा के विशिष्ट (खास तरह के)

विक्षेपों को दूर करता है परन्तु तभी, जब उसके पहले के अंग सिद्ध कर लिए गए हों। यह इस बात की पुष्टि ही है कि ईश्वर को पाने का अष्टांग योग एक मात्र रास्ता है।

अष्टांग योग को आठ अलग-अलग चरणों वाला मार्ग नहीं समझना चाहिए; यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। योग के ये आठ अंग हैं:

१) यम, २) नियम, ३) आसन, ४) प्राणायाम, ५) प्रत्याहार, ६) धारणा ७) ध्यान ८) समाधि

यम

अष्टांग योग के अंतर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार) 'बहिरंग' और शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अंतरंग' नाम से प्रसिद्ध हैं। बहिरंग साधना यथार्थ रूप से अनुष्ठित होने पर ही साधक को अंतरंग साधना का अधिकार प्राप्त होता है। 'यम' और 'नियम' वस्तुतः शील और तपस्या के द्योतक हैं। यम का अर्थ है संयम जो पांच प्रकार का माना जाता है :

(क) अहिंसा (ख) सत्य (ग) अस्तेय (घ) ब्रह्मचर्य (ङ) अपरिग्रह

(क) अहिंसा - शब्दों से, विचारों से और कर्मों से किसी को अकारण हानि नहीं पहुँचाना

वेद व ऋषियों का मन्तव्य यही कहता है कि, हिंसा व अहिंसा अन्याय व न्याय पर खड़ी है। न्याय पूर्वक दण्ड-कष्ट देना भी अहिंसा है व अन्याय पूर्वक पुरस्कार-सुख देना भी हिंसा है। सत्य आदि बाकि चारों यम व शौच आदि पांचों नियम अहिंसा पर ही आधारित हैं। अहिंसा को

पुष्ट करना ही उनका मुख्य लक्ष्य है। अहिंसा की सिद्धि के लिए उनका आचरण किया जाता है।

(ख) सत्य - विचारों में सत्यता, परम-सत्य में स्थित रहना, जैसा विचार मन में है वैसा ही प्रामाणिक बातें वाणी से बोलना

जो चीज़ जैसी है उसे वैसा ही जानना व मानना सत्य कहलाता है। उदाहरण के तौर पर सांप को सांप जानना व मानना सत्य कहलाएगा और सांप को रस्सी जानना व अन्यथा रस्सी को सांप जानना असत्य कहलाता है। हमें सदा अपनी वाणी से ठीक वैसी ही बात करनी चाहिए जैसी कि हमारी आत्मा में किसी घटना अथवा वस्तु के बारे में जानकारी हो।

(ग) अस्तेय - चोर-प्रवृत्ति का न होना

अस्तेय का शाब्दिक अर्थ है चोरी न करना। किसी दूसरे की वस्तु को पाने की इच्छा करना मन द्वारा की गई चोरी है। शरीर से अथवा वाणी से तो दूर, मन से भी चोरी न करना। किसी की कार को देखकर उसे पाने की इच्छा करना, किसी सुन्दर फूल को देखकर उसे पाने की चाह करना आदि चोरी ही तो है।

(घ) ब्रह्मचर्य - दो अर्थ हैं- 1- चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना

2- सभी इन्द्रिय जनित सुखों में संयम बरतना

शरीर के सर्वविध सामर्थ्यों की संयम पूर्वक रक्षा करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

इन्द्रियों पर जितना संयम रखते हैं उतना ही ब्रह्मचर्य के पालन में सरलता रहती है।

इन्द्रियों की चंचलता ब्रह्मचर्य के पालन में बाधक है। अपने लक्ष्य के प्रति सजग रहते हुए सदा

पुरुषार्थी रहने से ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता मिलती है। महापुरुषों, वीरों, ऋषियों, आदर्श पुरुषों के चरित्र को सदा समक्ष रखना चाहिए। मिथ्या-ज्ञान (अशुद्ध-ज्ञान) का नाश करते हुए शुद्ध-पवित्र-सूक्ष्म विवेक को प्राप्त करने से वीर्य रक्षा में सहायता मिलती है।

ब्रह्मचर्य के विपरीत है व्याभिचार। व्याभिचार से भी वैसे ही हिंसा होती है, जैसे झूठ से व चोरी से होती है।

(च) अपरिग्रह –

आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना मन, वाणी व शरीर से अनावश्यक वस्तुओं व अनावश्यक विचारों का संग्रह न करने को अपरिग्रह कहते हैं।

अपरिग्रह का पालन भी अहिंसा की सिद्धि के लिए ही किया जाता है। परिग्रह सदैव दूसरों को पीड़ा देकर ही किया जाता है। अनावश्यक वस्तुओं का, अनावश्यक विचारों का, उचित-अनुचित स्थानों से निरुद्देश्य संग्रह करना परिग्रह है। इसके विपरीत ऐसा न करने को अपरिग्रह कहते हैं। यदि कभी अधिक संग्रह भी हो जाये तो शेष को दान करते रहना चाहिए। इस दान से उपजे आत्म संतुष्टि के भाव का मूल्य संसार के मूल्यवान पदार्थों से भी अधिक ही रहेगा।